

धार्मिक परिप्रेक्ष्य में—आज का श्रावक

डॉ० सुभाष कोठारी

शोध अधिकारी, आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, उसे समाज, परिवार, राष्ट्र से जुड़े होने के कारण प्रत्येक क्षेत्र में अपने कार्य व्यवहार को करना पड़ता है और करता है। २५०० वर्ष प्राचीन महावीर समाज की तुलना वर्तमान समाज से करें, तो हम पाते हैं कि महावीर के प्रचलित सिद्धान्त व उपदेश दोनों ही समयों में युगानुकूल थे व है, आवश्यकता सिर्फ उसे अन्तःस्पष्टित कर समझने की है। हाँ, यह अवश्य है कि देश काल की परिस्थितियों से आज का मानव तार्किक व वक्र हो गया है जब कि महावीर युगीन मानव भद्र व सरल प्रकृति का था।

विभिन्न धर्म ग्रन्थों में साधना की मुख्य रूप से दो ही विधियाँ प्रचलित है—प्रथम गृहस्थावस्था का त्याग कर संन्यासी, योगी, मुनि व भिक्षु बनना व द्वितीय ग्रहस्थावस्था में रहकर श्रावक, उपासक, अनुयायी व गृही बनना। दोनों ही के पालन करने योग्य कुछ नियम पूर्वाचार्यों ने धर्मग्रन्थों में प्रतिपादित किये हैं। यह एक अलग बात है कि वे नियम कहाँ तक पालन होते हैं। जैन आचार ग्रन्थों में श्रावक व उसके पालन करने के नियमों का विस्तार वर्णित है।

आपक

जैन आगम ग्रन्थों में उपासक, श्रमणीपासक, गिही, अगार व श्रावक शब्द ग्रहस्थ के लिये प्रयुक्त हुए हैं। पं० आशाधर ने सागारधर्मावृत में पंच परमेष्ठी का भक्त, दान व पूजन करने वाला, मूलगुण व उत्तरगुण का धालन करने वाला श्रावक होता है, यह कहा है।^१ एक श्रावक शब्द “श्रु” धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ है सुनने वाला। अर्थात् जो प्रतिदिन साधुओं से सम्यक दर्शन आदि सामाचारों को सुनता हो, वह परम श्रावक है।^२

श्रावकाचार की पूर्वपीठिका

एक ग्रहस्थ को श्रावक कहलाने की स्थिति तक पहुँचने के लिये कुछ विशिष्ट गुणों को अपने अन्तः चेतन में स्थान देना आवश्यक होता है। वैसे इनका कोई आगमिक उल्लेख प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि यह मानकर चला जाता है कि एक सद्ग्रहस्थ में ये गुण तो होंगे ही। उत्तरवर्ती आचार्यों, जिनमें हरिमद्र-धर्म-बिन्वु प्रकरण^३

१. सागार धर्मावृत १, १५।

२. श्रावक प्रज्ञप्ति, गाथा २।

३. शास्त्री, दैवेन्द्र मुनि : जैन आचार : सिद्धान्त व स्वरूप, पृष्ठ २३७।

४. हेमचन्द्र, योगशास्त्र : ११४७-५६।

हेमचन्द्र-योगशास्त्र,^४ पं० आशाधर-सागार धर्ममृत^५ ने इन सद्गुणों का उल्लेख किया है। योगशास्त्र में इन्हें मार्गानुसारी के गुण कहकर निम्न प्रकार नामांकित किया है :

१. न्याय-नीति से धन का उपार्जन करना।
२. शिष्ट पुरुषों के आचार की प्रशंसा करना।
३. अपने कुल व शील के समान स्तर वालों से परिणय सम्बन्ध करना।
४. पापों से भय।
५. प्रसिद्ध देशाचार का पालन करना।
६. परनिन्दा नहीं करना।
७. एकदम खुले व बन्द स्थान पर घर का निर्माण नहीं करना।
८. घर के बाहर जाने के द्वार अनेक नहीं हो।
९. सदाचारी पुरुषों की संगति करना।
१०. माता-पिता की सेवा भक्ति करना।
११. चित्त में क्षोभ उत्पन्न करने वाले स्थान से दूर रहना।
१२. निन्दनीय काम में प्रवृत्ति नहीं करना।
१३. आय के अनुसार व्यय करना।
१४. आर्थिक स्थिति के अनुसार कपड़े पहनना।
१५. बुद्धि के आठ गुणों से युक्त होकर धर्म भवण करना।
१६. अजीर्ण होने पर भोजन नहीं करना।
१७. नियत समय पर संतोष से भोजन करें।
१८. चार पुरुषार्थों का सेवन करना।
१९. अतिथि—आदि का सत्कार करना।
२०. कभी दुराग्रह के वशीभूत नहीं हो।
२१. गुणों का पक्षपाती हो।
२२. देश व काल के प्रतिकूल आचरण नहीं करना।
२३. अपनी सामर्थ्य के अनुसार काम करें।
२४. सदाचारी का आदर करें।
२५. अपने आश्रितों का पालन पोषण करें।
२६. दीर्घदर्शी हो।
२७. अपने हित-अहित को समझे।
२८. कृतज्ञ हो।
२९. सदाचार व सेवा द्वारा जनता का प्रेम सम्पादित करें।
३०. लज्जाशील हो।
३१. दयावान हो।

३२. सौम्य हो ।

३३. परोपकार करने में उद्यत हो ।

३४. काम क्रोधादि के त्याग में उद्यत हो ।

३५. इन्द्रियों को बश में रखे ।

यद्यपि इन गुणों की संख्या भी विभिन्न आचार्यों ने अलग-अलग बताई है, फिर भी इन पैंतीस गुणों में उन सबका समावेश हो जाता है। इन गुणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैन आचार के नियम पूर्णतः व्यावहारिक व सामाजिक है। इन गुणों पर व्यक्ति के स्वयं, परिवार, व समाज का विकास निर्भर है। इन व्यावहारिक नियमों के बाद सैद्धान्तिक नियमों को लें, तो अणुव्रत, गुणव्रत व शिक्षाव्रतों का पालन महत्त्वपूर्ण होता है।

अणुव्रत

अहिंसा, सत्य, अस्तैय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह का स्थूल रूप से पालन करना अणुव्रत कहलाता है। हिंसा के दो भेद किये जा सकते हैं—सूक्ष्म व स्थूल। पृथ्वी, पानी, वायु, अग्नि व वनस्पति की हिंसा सूक्ष्म व त्रस प्राणियों की हिंसा स्थूल हिंसा कही जाती है। श्रावक गृहस्थावस्था में रहकर सूक्ष्म हिंसा से नहीं बच पाता है और सामाजिक कार्यों में स्थूल हिंसा होती है। अतः वह सिर्फ “मैं इसे माऊँ” इस प्रकार की संकल्पी हिंसा का त्याग करता है। आज के व्यावहारिक जगत में भी सम्य व्यक्ति अनावश्यक त्रस जीवों की हिंसा का विरोध करेगा ही।

द्वितीय असत्य भाषण नहीं करने की बात है। इसमें लोक चिरुद्ध, राज्य-विरुद्ध, धर्म विरुद्ध झुठ नहीं बोलने का विधान है। दूसरों की निन्दा करना, गुप्त बातों को प्रकट करना, झूठा उपदेश देना, झूठे लेख लिखना—इनमें दोष माने गये हैं।

स्थूल रूप से चोरी नहीं करना, किसी को चोरी के लिए नहीं भेजना, चोरी की वस्तु नहीं लेना, राज्यनियमों का उल्लंघन नहीं करना अस्तैय अणुव्रत है। सामान्यतया यह सामाजिक व आर्थिक अपराध भी है।

अपनी पत्नी की मर्यादा रखकर अन्य सभी त्रियों को माता-बहिन के सदृश्य समझना ब्रह्मचर्य सिद्धान्त है। किसी वैश्या आदि के साथ रहना, अश्लील काम क्रीड़ाएँ करना, दूसरों का विवाह कराना, कामभोग की तीव्र अभिलाषा करना दोष है। इनसे बचने का निर्देश है। आज भी बलात्कार, वैश्यावृत्ति, हेय दृष्टि से देखे जाते हैं।

अपनी आवश्यकता से अधिक वस्तु का उपयोग नहीं करना, उसे दूसरों को बाँट देना अपरिग्रह है। साथ ही अपने उपयोग में आने वाली वस्तुओं की मर्यादा निश्चित ले जिससे उससे अधिक परिग्रह से मुक्त रह सकें।

तीन गुणव्रत

इनमें दिशाव्रत, उपभोग परिमाण व्रत व अनर्थ दण्ड आते हैं। ये अणुव्रतों के विकास में सहायक होते हैं। दिशाव्रत दिशाओं की सीमा निर्धारण करता है, उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम आदि में गमनागमन एवं व्यापार करने पर रोक लगाता है। अनर्थ दण्ड हरी वनस्पति काटना आदि अनर्थकारी हिंसा के त्याग का उपदेश देता है।

चार शिक्षाव्रत

इनमें सामायिक देशावकाशिक, औषध व अतिथि संविभाग व्रत सम्मिलित हैं। ये मानव की अन्तः चेतना से जाग्रत संस्कार हैं। इनसे आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसर हुआ जाता है। इनसे व्यक्ति सहिष्णु व आत्मजयी बनता

है, विकारों व पापों का प्रायश्चित्त करता है व मुक्ति की ओर अग्रसर होने के लिए कदम बढ़ाता है, यद्यपि जैन आचार के ग्रन्थों में गुणव्रतों व शिक्षाव्रतों के नामों में भेद है फिर भी अर्थ व विवेचना की दृष्टि से सभी एक समान है ।

वर्तमान परिस्थितियाँ

उपयुक्त श्रावकाचार के व्यावहारिक व सैद्धान्तिक नियमों को जब आज के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं, तो ग्लानि महसूस होती है । अपवाद की बात नहीं करता, परन्तु साधु के लिए भी “अम्मा पिया” की उपाधि से अलंकृत श्रावक आज अपना अस्तित्व भूलाए बैठे हैं । आज अहिंसक होने के स्थान पर दूसरों पर दोषारोपण, बाह्य आडम्बर पूर्ण वैभव प्रदर्शन व आयोजन, धर्म व सम्प्रदाय के नाम पर समाज टुकड़े-टुकड़े कर देने वाला अहिंसा का पूजारी महावीर का अनुयायी वही श्रावक है ?

अपना दोष दूसरों पर आरोपित कर सम्यक्त्व कहलाने वाला श्रावक स्वधर्मो बन्धु की आलोचना करता-फिरता है । डॉ० दयानन्द भार्गव ने एक समा में ठीक ही कहा था कि “घर में पहले दिया जला लें, मन्दिर में बाद में” । स्वयं के दोषों को पहले देख लें, बाद में अन्य की आलोचना करें । धर्म व सिद्धान्त की बात करते हुए हम अपने अन्दर में हिंसा, स्वार्थ व आसक्ति के तत्व छिपाये घूम रहे हैं । सच तो यह है कि ऐसे दिखावटी श्रावकों का ही बोलबाला रहता है । साधु वर्ग सभी को धर्म, सदाचार व नैतिकता का पाठ पढ़ाते हैं और उनकी निगाहों के नीचे वह सब होता है जो नहीं होना चाहिये । लाखों का दान देने वाला व्यक्ति समाज का नेता, सुधारक, धर्मनिष्ठ, उपासक, उपाधियों से अलंकृत होता है । यह कैसा श्रावक ? व कहाँ का धर्मनिष्ठ ? अगर सच पूछा जाय तो एक माह में एक घण्टा भी श्रावकाचार का पालन नहीं होता होगा ।

आज श्रावक स्वयं के आचार से भी पूर्ण रूप से परिचित नहीं है, तो पालन करने की बात ही क्या है ? कहाँ है वह श्रमण भगवान महावीर के अनुयायियों की परम्परा जहाँ एक और आनन्द व कामदेव जैसे श्रावक थे—जयन्ती, शिवानन्दा, अग्निमित्रा जैसी श्राविकाएँ थी, जो साधुओं से भी उत्कृष्ट कोटि की साधना में रत थे, जो स्वयं के आचार-विचार के ज्ञाता होने के साथ साथ साध्वाचार के भी पूर्ण ज्ञाता थे । जहाँ स्वयं के आचार में शिथिलता आती उसका प्रायश्चित्त करते थे, साथ ही मुनि आचार में शिथिलता दृष्टिगोचर होती, तो उन्हें भी कर्तव्य बोध कराते थे । परन्तु आज इस दायित्व को संभालने वाला श्रावक वर्ग कहाँ है ? कहाँ है वह लोकाशाह जो समाज में कान्ति का अग्रदूत बन सके ?

श्रावक का पहला कदम सम्यक्त्व होता है अर्थात् सुगुरु, सुदेव व सुधर्म पर श्रद्धा, परन्तु आज हमारे धर्माचार्य सम्यक्त्व के नाम पर अपनी अपनी टीमें बना रहे हैं, वे अलग-अलग गुरुओं से अलग-अलग सम्यक्त्व ग्रहण कराने पर जोर देते हैं । श्रावक आचार के नियमों को सुयुगानुकूल परिस्थितियों में कहीं भी बदलने की आवश्यकता नहीं है^६ । क्या महावीर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त सप्त कुव्यसन का त्याग, मार्गानुसारी के गुण; बारह व्रतों की उपयोगिता तब थी, अब नहीं है और उनमें परिवर्तन की गुंजाइश है ? नहीं ! ये तो जीवन के शाश्वत मूल्य हैं, जिनमें वर्षों क्या, शताब्दियों तक परिवर्तन की गुंजाइश नहीं है ।

श्रावकाचार का आशय सिर्फ यही है कि श्रावक अपनी अस्मिता को पहचाने, अपने आचरण व व्यवहार में एकरूपता रखे । अपने कर्तव्यों व दायित्वों को पहचानने से ही समाज का अस्तित्व बना रह पायेगा ।



६. श्रावक धर्म की प्रासंगिकता का प्रश्न—डॉ० सागरमल जैन ।